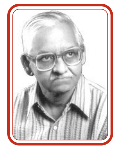

(1936-2009)

ध्यान पत्रिका

संस्थापक : डॉ० शम्भू नाथ

M.Sc., Ph.D.

वर्ष-26 फरवरी-2016 अंक-2

जो प्यार दिया; वही आपको मिलेगा।
बच्चे का मन बहते पानी की तरह निर्मल होता है।
वह सभी को समान रूप से देखता है।
उसका प्यार भी सभी के लिए समान होता है।

बालमन नफे नुकसान का गणित नहीं जानता। उसे केवल थोड़ा सहारा और प्यार चाहिए। फिर वह मां की गोद से मिले, पिता, बहन, दादी या दादा की गोद से। वह मस्त है।

लेकिन हमने अपनों को श्रेण्यिों में बांट रखा है।
किसके हिस्से कितना अपनापन और प्यार आएगा?
यह तय कर रखा है। पर एक बच्चे की नजर से सोचें और जवाब दें :
क्या अपनत्व को इस तरह बांटा जा सकता है?
नहीं! यह तो झरने की तरह होता है।
बस, बिना रोक टोक बहता जाता है।
इसलिए उस नन्हे की तरह बस, बांहें खोलें; फिर जितना देंगे -
उससे कहीं अधिक पाते जाएंगे।

-एल्बर्ट हबर्ड

प्रकाशक

ध्यान सत्संग सभा

पंजीकरण संख्या : 280/2013
हिसार (हरियाणा), मो. : 09416164702, 09416041346
Facebook : dhyansatsangsabha@gmail.com

ध्यान दित्ता मैंनू मस्त बना

- श्री अमर नाथ हंस (090343-34644)

'ध्यान', दित्ता मैंनू मस्त बना।
कि मस्तियां मैं वंडदी फिरां॥टेक॥
ध्यान साधना दा गुर अन्दरों मैं पाल्या,
नैना बन्द कर इसनूं अपना बनाल्या।
रोम रोम विच गया है समा,
कि मस्तियां मैं वंडदी फिरां॥टेक॥
भुल गये ने गम सारे, चढ़ी मैंनू मस्ती हे,
बिन पिए चढ़दी-ऐह बड़ी ही सस्ती हे।
ऐहने दित्ता मैंनू जीणा सिखा,
कि मस्तियां मैं वंडदी फिरां॥टेक॥
ध्यान साधना दा इक निशां ही अनोखा हे,
इस दुनियां दे विच धोखा ही धोखा हे।
आनन्द दा मैं करां किस तरहां ब्यां?
कि मस्तियां मैं वंडदी फिरां॥टेक॥
बन के गोपाल, अन्दर मुरली बजान्दा हे,
बाहर दे दु:ख सारे दूर भगान्दा हे।
ऐहना दित्ता मैंनू कमली बना,
कि मस्तियां मैं वंडदी फिरां॥टेक॥

ध्यान साधना; सब से बड़ी सेवा

✍ श्री राकेश गर्ग, (98967-89678)

हर व्यक्ति मन की खुशी के लिए तरह तरह के साधनों को इक्ट्ठा करता है। ज्यों ज्यों उम्र बढ़ती है, व्यक्ति अनुभव करता है; शायद कहीं कोई चूक हुई अथवा गलती हो गई, जिस के कारण खुशी गायब होती जा रही है। वह असमंजस में है कि जीवन को बर्बाद करने के लिए, उस ने स्वयं अपने पैर पर कुल्हाड़ी मार ली।

गलती क्या हो गई?

इस का उत्तर बौद्धिक तर्क वितर्क के आधार पर नहीं मिलता। कुछ ऐसे भाग्यशाली भी हैं; जिन्हें ध्यान की शिक्षा मिल जाती है और ध्यान का अभ्यास करते करते उन्हें

यह अहसास होने लगता है कि मन का आन्तरिक जगत में विचरण ही अत्यन्त सुखदायी है।

इस कारण उन का ज्यादातर समय आन्तरिक आनन्द (Internal Bliss) में बीतने लगता है और यह आनन्द उन के मन को खूश रखने में मददगार है।

ज्यों-ज्यों उम्र बढ़ती है; साधक की खुशी बढ़ती जाती है। तब वह महसूस करता है कि उसका जन्म सफल हो गया। इस तरह वह हर समय सन्तुष्ट रहता है। होनी की शक्ति, मन में परमात्मा का आभास और ध्यान के नियमित अभ्यास द्वारा; आनन्द इतना उभर जाता है कि उसका मन अब बाहर के सुख को छोड़ कर आन्तरिक आनन्द की ओर बढ़ने लगता है। फल स्वरूप उस व्यक्ति का मन चौबीसों घंटे आनन्दमय रहता है और वह कभी विचलित नहीं होता ।

दृष्टान्त; जैस नील की बाल्टी से कपड़ा निकाल कर धूप में डालने पर कुछ रंग उड़कर वातावरण में चला जाता है। ऐसे ही ध्यान के समय अन्दर से ईश्वर के सत् चित् आनन्द को लाकर कुछ भाग अपने अन्दर रख लेता है। फिर क्रियाओं के समय कुछ सत्य और आनन्द वातावरण में फैल जाता है। यह भगवान, समाज, देवी-देवता और सृष्टि की सबसे बड़ी सेवा है।

ध्यान (Meditation) सब से ऊँची और सब कुछ प्राप्त कराने वाली साधना होगी।

सभी साधक ध्यान साधना करके अपने अन्दर से परमात्मा को ढूंढते और पाते हैं। डॉ० शंभुनाथ जी ने हमें यही रास्ता सिखाया है। महापुरूषों और भक्तों की प्रेरणा हमें लक्ष्य प्राप्ति में सहायक होती है। ध्यान साधना द्वारा हमारा पूरा परिवार सत्संगी बन गया है। हम सभी डॉ० शंभुनाथ जी के बहुत आभारी हैं, जिन्होंने हमें यह सद्मार्ग दिखलाया है।

संसार-बंधन

स्वामी रामतीर्थ कहा करते थे कि यह संसार वास्तव में कुछ भी नहीं। इससे व्यर्थ ही मन-कुरंग उलझा हुआ है। **इससे सुलझने का सुगम मार्ग केवल ईश्वरीय ज्ञान है। इसके बिना निवृत्ति कठिन ही नहीं, अपितु असम्भव है।**

जब तक हृदय मन्दिर में ज्ञान का दीपक नहीं जगमगाता; तब तक पास पड़ी हुई वस्तु को भी अदृश्य जानकर प्राणी उसको ढूंढने का प्रयत्न करता है। अत: मनुष्य का कर्तव्य है कि सांसारिक कर्तव्यों का पालन करता हुआ भी उसमें से कुछ-न-कुछ तत्व ग्रहण करके नि:सार पदार्थ को छोड़ दे।

जिस प्रकार हंस दूध को निकालकर पानी को छोड़ देता है।

उसी प्रकार विद्वान् पुरुष का मुख्य कर्तव्य यह है कि प्रत्येक वस्तु में से वास्तविकता को ग्रहण कर; असार को छोड़ दे।

सांसारिक जालसे सुलझने के लिये; ईश्वरीय ज्ञान का होना अत्यन्त आवश्यक है।

यदि कुछ दु:ख-विपत्तियां आ भी पड़ीं-तो उन्हें शान्ति से ईश्वर पर विश्वास रखकर सहन करने का अभ्यास होना चाहिये। साथ ही ईश्वर में प्रबल विश्वास तथा मनकी दृढ़ता भी अनिवार्य है।

ध्यान द्वारा आन्तरिक शक्ति

—डॉ० बलदेव राज नाशा

भक्त; सबके अन्दर बैठी भगवान की शक्ति को ध्यान द्वारा, अनुभव करके सदा आनन्दमय रहता है। इस प्रकार वह हर समय, सब कुछ बड़े उत्साह से करता है।

चौरासी लाख योनियों में से मनुष्य, ईश्वर की बड़ी संतान है। साधना करके अपना उत्थान करना, प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है। ध्यान साधना करने वालों के लिए यह संसार दु:खालय नहीं; बल्कि आनन्दमय है। आनन्द, शान्ति, संतुष्टि, सफलता आदि; सब कुछ हमें अन्दर से मिलता है। अर्थात् अखण्ड स्वास्थ्य, अखण्ड शक्ति, अखण्ड प्रेम, अखण्ड ज्ञान एवं अखण्ड आनन्द को हम ध्यान के द्वारा सब गुणों को आनन्द द्वारा अपने अन्दर से उभारते हैं।

संसार की सब सफलताएं अन्दर की शक्ति से प्राप्त होती है।

निर्मल मन जन; सो मोहि पावा।

हमारी बुद्धि और मन निर्मल होने से, हम सुगमता से भगवान को प्राप्त कर लेते हैं।

छोटे बच्चे निर्मल मन होने के कारण सबको प्यारे लगते हैं। उमर बढ़ने पर बुद्धि और मन पर छल कपट की मैल चढ़ जाती है। नित्य ध्यान के लिए बैठ कर इस मैल की सफाई कर देना बहुत आवश्यक है। कपड़े बहुत मैले होने पर, खूब धुलाई करने से भी पूरी सफाई नहीं हो पाती। इसी तरह मैल के बहुत अधिक बढ़ जाने से बड़ी उमर में, इस मैल (संस्कार) का उतरना अत्याधिक कठिन हो जाता है। जो बुढ़ापे में Depression का कारण बनती है।

ध्यान के बहुत तरीके होने पर भी सहज ईश्वर का ध्यान सबसे सरल है। भगवान का नाम सोचकर चुपचाप कम से कम 30 मिनट आराम देय आसन पर बैठना चाहिए। थक जाने पर बिना आंखें खोले, धीरे से आसन बदल भी सकते हैं। मन की उचाटी होने पर बीच बीच में, मन ही मन में नाम उच्चारण, सोच सकते हैं। ध्यान के अंत में चेहरे पर हाथ रखकर धीरे से आंखें खोल लें। 5-7 मिनट के लिए लेट कर आराम कर लेवें। यदि नींद आ जाए तो यह अच्छा लक्षण है।

फिर अपने दैनिक काम करें। 5-7 घंटे के अन्तर से एक दिन में प्रातः, दोपहर, सायं, तीन बार ध्यान के लिए बैठें। प्रातः का ध्यान सबसे अधिक लाभ देता है। रात को सोते समय या 2-3 घंटे पहले भी ध्यान के लिए बैठ सकते हैं। ध्यान के समय सीधे बैठें। परन्तु अकड़ या तन कर नहीं। ध्यान से विद्यार्थी की बुद्धि तीक्ष्ण होती है। पढ़ाई करने से पहले ध्यान करने से पाठ शीघ्र याद हो जाता है।

ध्यान के समय विचारों में खो जाना और बन्धनों का हट जाना ही; ईश्वर का ध्यान है। बाहर के अस्थाई सुखों में पड़ जाना; दुःखदायी होता है।

केवल भगवान का विश्वास पात्र बनना है। इसमें देरी हमारी है। ईश्वर तैयार बैठा है। सवेरे शाम उसको याद करो।

जहां प्राण है, वहीं जीवन है।

जीवात्मा के उत्थान के लिए प्राण गिनती के मिलते हैं। बिगड़े तिगड़े शरीर को

प्राणायाम एवं योग द्वारा स्वस्थ करके ध्यान के लिए बैठना आसान होता है। सोना, स्वप्न और जागृती ये तीन नीचे की चेतनाएं हैं। भावातीत (Transcendental), ब्राह्मी, ईश्वरीय (God) एवं अद्वैत (Union), ये चार ऊपर की चेतनाएं हैं। ऊपर की चेतनाएं प्राप्त करने के लिए ध्यान का पुरुषार्थ करना पड़ता है। इनसे आनन्द, सफलता, इच्छा पूर्ति की शक्ति, मुक्ति एवं मोक्ष की प्राप्ति होती है। फिर हमारी मर्जी, दोबारा जन्म लें अथवा नहीं लें।

बूंद के समुन्द्र में मिल जाने के समान; जीवात्मा का परमात्मा में समा जाना हो जाता है।

सामुहिक ध्यान एक सहायक क्रिया है। अनेकों में बैठकर ध्यान की सामुहिक तरंगें, नए साधक को भी पहले दिन ही ध्यान के लिए डेढ घण्टे तक बैठने में समर्थ कर देती हैं।

हम अपना कमाया धन बाजार में खर्च करते हैं।

इसी प्रकार ध्यान द्वारा शक्ति कमा कर, मन में भरते हैं। फिर उस शक्ति को अपने सुख और आत्मोत्थान के लिए खर्च करते हैं। ब्रह्माण्ड में जो कुछ हो रहा है। वही सब कुछ हमारी शरीर अर्थात् पिण्ड में भी हो रहा है।

जो पिंडे, सो ब्रह्मांडे।

हमारे ध्यान का प्रभाव पूरे विश्व पर पड़ता है। ध्यान से हमारा सम्मानित विकास होता है। सब अंगों का विकास बराबर होता है। इनको हम ध्यान द्वारा गहराई में जाकर ही प्राप्त करते हैं। बुद्धि का विकास, बाहरी संसार से होता है। बुद्धि से अविष्कार और विनाश, दोनों होते हैं। मन एवं जीवात्मा ध्यान द्वारा संस्कार निकसित उप्रान्त ही विकसित होते हैं।

मन की शक्ति

—श्री महेन्द्र सिंह जांगड़ा (094676-07109)

जैसे आसन और व्यायाम के बगैर मानव शरीर पुष्ट नहीं होता; ठीक उसी प्रकार मन का कार्य उचित तरीके से संपन्न करने के लिए, कुछ न कुछ मानसिक योग भी

आवश्यक है। जिस मानव में असीम शारीरिक शक्ति हो, लेकिन मन का स्वरूप विकसित न हो, उसे पूर्ण मनुष्य नहीं कहा जा सकता।

क्या आपके मन में बीते हुए दुर्बल और हानिकारक विचार उत्पन्न होते हैं?

ऐसे विचारों को दूर करने के लिए अंत:करण शुद्ध कीजिए। इन्हें स्वच्छ करना बहुत जरूरी है। समस्त रोग, शोक, दुख व निराशा के विचार मस्तिष्क में विषैले कीटाणु उत्पन्न करते हैं। इसलिए इनको मन के व्यायाम (ध्यान) से मुक्त करते रहना चाहिए। मन का मैल निकाल देने पर वह पूर्ण विशुद्ध रूप में आ जाता है और प्रत्येक कार्य उत्तम रीति से संपन्न कर सकता है।

प्रत्येक व्यक्ति का मन चंचल होता है। लेकिन वास्तविक रूप में उसका स्वभाव क्या है? और कैसे स्थिर किया जा सकता है? इसे हम मधुमक्खी के उदाहरण से समझा सकते हैं। हम देखते हैं कि मधुमक्खी एक फूल से दूसरे फूल पर उड़ती रहती है। हमें यह लगता हे कि मधुमक्खी का स्वभाव; उड़ते रहना है; लेकिन वास्तव में मधुमक्खी का स्वभाव उड़ते रहना नहीं है। उनका उद्देश्य फूलों से रस इकट्ठा करके शहद बनाना है। ठीक इसी प्रकार हमारा मन इधर उधर भटकता है। हम समझते हैं कि हमारे मन का स्वभाव चंचल है। लेकिन

वास्तव में मन का स्वभाव चंचल नहीं है। वह आनंद की खोज में भटकता रहता है। जब उसे आनन्द मिल जाता है तो वह बिना प्रयास के ही स्थिर हो जाता है। मन का उद्देश्य आनंद की खोज करना है। मन अधिक आनंद का क्षेत्र ढूंढ़ता है। जब हम नियमित रूप से भावातीत ध्यान का अभ्यास करते हैं तो विशुद्ध चेतना के क्षेत्र में संपर्क करते हैं; जहां अनंत ज्ञान व आनंद का भंडार है।

हमारा उद्देश्य अधिक ज्ञान, अधिक शक्ति तथा अधिक आनंद की प्राप्ति है। जब हम ध्येय से बाहर आकर; उस ज्ञानवर्धक विचार को लेकर कार्य करते हैं; तो अधिक आनंद की प्राप्ति होती है और क्रिया अधिक प्रभावकारी होती है।

मनन करना (Meditation) मन का श्रेष्ठ नहीं; सर्वश्रेष्ठ व्यायाम है।

आप सारे दिन किस प्रकार के विचारों का चिंतन-मनन करते हैं?

किन - किन विभिन्न वृत्तियों, भावनाओं में दिन गुजरते हैं?

अपने मन के द्रष्टा बनकर पूर्ण परीक्षा कीजिए। शास्त्र कहते हैं कि जो मनुष्य अपने विषय में तुच्छ विचार रखते हैं; वे भयंकर मानसिक रोग से पीड़ित हैं। एक ऊंची भावना, मन में लेकर भावातीत ध्यान (Transcendental Meditation) में निमग्न होकर विचरण करें। उसी से जीवात्मा को स्नान कराते रहें। शुभ विचार से द्वेष, घृणा, ईर्ष्या आदि का उद्भव नहीं होता।

निरोग मन बनाने के लिए अपने ईश्वरीय तत्व को प्रकाशित कीजिए।

आपके मन का प्रत्येक अणु ईश्वरीय तत्व से अनुप्राणित है। ईश्वर के मार्ग-प्रकाश में, अवरोध न डालिए। अध्ययन, मनन या साधना के समय यदि मन शान्त चित्त न किया जाए, तो उसका फल प्राप्त नहीं होता।

अशुभ चिंतन मानसिक दुर्बलता का प्रतीक है।

(1936-2009)

होनी और करनी

✍ डॉ० शम्भूनाथ

'होनी' और 'करनी' एक ही शक्ति के दो रूप हैं।

शक्ति, जीवन का मूल है। बिना शक्ति के कुछ भी संभव नहीं। हम सरलता के अनुभव कर सकते हैं कि 'होनी' के रूप में शक्ति सर्वव्यापी है।

जहां सर्वव्याप्तता का गुण है, वहीं सबसे बड़ी शक्ति परमात्मा है; यही इस बात का प्रमाण है कि 'होनी' तो परमात्मा की शक्ति है। परमात्मा को जो कुछ भी करना होता है - वह 'होनी' के माध्यम से करता है।

परमात्मा एक है। एक से दो होने के लिये, सृष्टि में ब्याह का नियम भी परमात्मा का ही बनाया हुआ है। वह जो भी करता है, अपने बनाए हुए नियमों के अन्तर्गत ही करता है। स्वयं वह अपनी शक्ति के सागर के तट पर, अनन्त पूर्ण अचेतन के

रूप में प्रगट हुआ। एक पूर्ण चेतन ने, अनन्त पूर्ण अचेतन से ब्याह किया। जिससे तीन रूप; (1) निर्जीव, (2) वनस्पति जगत, और (3) जीव, में परमात्मा के अनन्त बच्चे उत्पन्न हुए।

इन बच्चों में जीव श्रेष्ठ है; और जीवों में मनुष्य सर्वश्रेष्ठ है। हर जीव का बच्चा ही, एक दिन पिता बनता है। इसी प्रकार से हर मनुष्य के बच्चे (जीव) को कभी न कभी पूर्ण होकर ईश्वर स्वरूप, होना ही पड़ेगा। भले ही उसे ईश्वर स्वरूप होने के पहले अनन्त जन्म क्यों न लेने पड़ें?

मात्र ईश्वर स्वरूप होने के बाद ही उसे दूसरा जन्म लेने से मुक्ति मिलेगी। जीव ईश्वर का अंश कहलाता है। सन्त तुलसीदास ने कहा है –

ईश्वर अंश जीव अविनाशी।
सत् चेतन घन आनन्द राशी।

ऊपर हमने देखा कि पूर्ण चेतन का संसार और अपूर्ण चेतन का संसार; अलग-अलग हैं।

पूर्ण चेतन के संसार को अद्वैत जगत कहते हैं; और अपूर्ण चेतन के संसार को द्वैत जगत कहते हैं।

द्वैत जगत में रह कर जीव अपूर्ण से पूर्ण होता है। अपूर्ण से पूर्ण होने के लिये उसे कर्म करना आवश्यक है। अपूर्ण, पूर्ण बने; इसमें बहुत लम्बा समय भी लग सकता है। कुछ जीव जल्दी भी अपूर्णता से पूर्णता की ओर अग्रसर हो सकते हैं। यह मात्र जीव के कर्मों पर निर्भर करता है कि; कौन जीव कितना लम्बा समय लेता है और कौन कम समय लेता है? **ऊपर लेखक बता चुका है कि मात्र मनुष्य के रूप में, जीव पूर्णता की ओर अग्रसर हो सकता है। कर्म का महत्व समझाने हेतु सन्त तुलसीदास ने यह भी कहा है –**

कर्म प्रधान, विश्व करि राखा।
जो जस करै, सो तस फल चाखा।

हर जीव को कुछ इन्द्रियां प्राप्त हैं। मात्र इन इन्द्रियों के माध्यम से अधिकतर जीव पृथ्वी लोक में कर्म करते हैं।

इन इन्द्रियों के माध्यम से परमात्मा का अनुभव असम्भव है।

इन्द्रियों के माध्यम से मात्र पृथ्वी लोक के कर्म सम्भव हैं। जीवन के ये सत्य, हमें यह ज्ञान देते हैं कि परमात्मा का लोक मनुष्य के लोक से बहुत सूक्ष्म है और कतई अलग है।

सत्य यह है कि परमात्मा के संसार में कर्म सूक्ष्म हैं और इन्द्रिय जगत में कर्म स्थूल हैं। इसका अर्थ यह है कि स्थूल जगत में जीव यदि स्थूल कर्मों से सूक्ष्म कर्मों की ओर बढ़ने का अभ्यास करे; तभी लम्बे समय के अभ्यास के बाद, वह परमात्मा स्वरूप की अवस्था को प्राप्त कर सकता है।

ऊपर हमने देखा कि जीव के पास कर्म करने लिये दो संसार हैं।

1) पहला इन्द्रिय जगत जो कि उसके शरीर के बाहर है और स्थूल जगत द्वारा जाना जाता है। 2) दूसरा संसार शरीर के अन्दर है और सूक्ष्म जगत के नाम से जाना जाता है।

हर जीव को हर समय कर्म करना पड़ता है। ये कर्म दो प्रकार के हैं – शरीर के अन्दर के कर्म; और शरीर के बाहर के कर्म। शरीर के बाहर के कर्म जीव, इन्द्रियों के माध्यम से करता है; इन्द्रियां नहीं करतीं। जैसे मनुष्य बाहर की सफाई का कर्म अपने हाथों से झाड़ू द्वारा करता है। अर्थात् कर्म तो हाथ करते हैं, झाड़ू नहीं करता। बाहर के कर्म, वे कर्म हैं जिनमें मन बुद्धि की मदद लिये बिना कर्म करना सम्भव नहीं है।

अन्दर के कर्म मात्र तब होते हैं, जब मन बुद्धि को छोड़ देता है; या यह कहें कि जीव बुद्धि को छोड़ देता है।

जब तक बाहर के कर्म होते हैं, जीव को एक अनुभूति होती है कि वह कुछ कर रहा है। अर्थात् जीव अपने 'मैं' को अनुभव करता है। **परन्तु जब अन्दर का कर्म आरम्भ होता है, तब जीव का यह अनुभव कि वह कुछ कर रहा है; समाप्त हो जाता है। इसीलिये (संत कबीर) ने कहा है –**

जब मैं था, तब हरि नहीं।

जब हरि था तब मैं नाहिं।।

कर्म आन्तरिक जगत का है। इसकी पहचान यही है कि हमारा 'मैं' हमारे कर्मों के साथ नहीं है। अर्थात् कर्म 'मैं' नहीं कर रहा हूं; स्वयं हरि कर रहा है।

जीवन के इन अनुभूतियों के क्षण जब 'मैं' कर्म नहीं कर रहा हूं और कर्म हरि कर रहा है; का अभ्यास हमें हरि को अनुभव करने में मदद करता है। हरि की अनुभूति ज्यों-ज्यों बढ़ती है, ईश्वर की चेतना जागृत होती है। ज्यों ज्यों ईश्वर की चेतना जागृत होती है, त्यों त्यों ईश्वर पर विश्वास जागृत होता है। इस विश्वास की जागृति के साथ साथ, ईश्वर पर समर्पण बढ़ता है।

ईश्वर के क्षेत्र में कर्म बिना थकावट के होते हैं। थकावट; जो कि मनुष्य को बहुत दुखदायी है, मात्र बाहर के क्षेत्र का कर्म है। बाहर के क्षेत्र में सुख और दुख की अनुभूति है। इसीलिये यह द्वैत जगत कहलाता है। द्वैत का अर्थ है दो। अब समझना कितना आसान है कि द्वैत जगत में दो शक्तियां हर समय काम करती रहती हैं-सुख की शक्ति और दुख की शक्ति। सुख प्राप्ति की शक्ति को 'राम की शक्ति' कहते हैं; और दु:ख प्राप्ति की शक्ति को 'रावण की शक्ति' के नाम से पुकारा जाता है।

राम और रावण की शक्तियां, कर्म करने की शक्तियां हैं।

जैसी शक्ति के माध्यम से जीवन के कर्म होते हैं - वैसा ही मनुष्य का जीवन बनने लगता है।

आन्तरिक शक्ति बढ़ाने हेतु, जीवन में कर्म करने वाले साधक अपने को आध्यात्मिक व्यक्ति कहते हैं। आध्यात्म का सन्धि विच्छेद है - अधि + आत्मा। अधि; का अर्थ है - सीमित होना। आध्यात्म का अर्थ है; वे कर्म जो मनुष्य को आत्म क्षेत्र में सीमित करें।

अर्थात् मनुष्य का मन बाहर के क्षेत्रों में कर्म की रूचि धीरे धीरे खोने लगे; और आत्मा के क्षेत्र के कर्मों में रूचि बढ़ने लगे। ऐसे पुरुष समाज में अपने को

आध्यात्मिक पुरुष कहलाने लगते हैं।

कर्म करने वाला मात्र जीव (मन) है।

आन्तरिक कर्म करने से मन की शक्ति बढ़ती है।

मन की शक्ति का अर्थ है; अपनी इच्छाओं की पूर्ति। जीव की समस्त इच्छाएं मन में ही होती हैं। इन इच्छाओं को पूरा करने की शक्ति भी, आध्यात्मिक कर्मों द्वारा मन को ही प्राप्त है। इसीलिये सन्त तुलसीदास ने रामायण में लिखा है :

जो इच्छा, करिहौ मन माहीं।

हरि प्रसाद, कछु दुर्लभ नाहीं।।

हरि के प्रसाद का अर्थ है - हरि की शक्ति। हरि में अनन्त अद्वैत शक्ति है। जीव, अविनाशी होते हुए पृथ्वी लोक पर मात्र इसीलिये रहता है; क्योंकि वह अविनाशी के गुणों से पूर्ण नहीं है। अविनाशी के तीन गुण हैं-सत्-चित्-आनन्द। हरि के प्रसाद का अर्थ है-सत्। जिस प्रकार से पृथ्वी लोक पर; जब बच्चा मां की पेट से बाहर आकर जन्म लेता है, तब उसके मन में हरि का प्रसाद तो लगभग कुटुम्ब के हर पुरुष से अधिक होता है। वह दिन में 23 घंटे Meditation में है। परन्तु उसमें सांसारिक धन रूपी सामाजिक विद्या (बुद्धि) नहीं होती। बालक का कुटुम्ब और समाज, एक विद्यालय है। जिसमें रहकर शरीर बढ़ने के साथ साथ, उसकी सामाजिक विद्या भी पूर्णता की ओर बढ़ती है।

बिल्कुल इसी प्रकार से जो बालक सामाजिक विद्या ग्रहण करने की ओर नहीं मुड़ते, वे धन रूपी आत्मिक विद्या की पढ़ाई की ओर समाज की मदद और भाग्य की शक्ति की मदद से मुड़ जाते हैं।

समय बढ़ने के साथ साथ अपने को सत्-चित्त-आनन्द; अर्थात् हरि के प्रसाद से पूर्ण करने लगते हैं। जैसा कि सन्त तुलसीदास ने कहा है, हरि प्रसाद तो वह धन है, जो बालक या मनुष्य की बाहर के जीवन की हर इच्छा, बिना प्रयास के पूर्ण कर देता है। ज्यों-ज्यों बालक इस विद्या में पूर्ण होता रहता है, उसे जीवन में कुछ भी पाने के लिये कोई प्रयास पूर्ण जीवन नहीं बिताना पड़ता।

द्वैत जगत के हर मनुष्य के जीवन में कुछ न कुछ प्रयास अवश्य है। वह

अपने जीवन को बारीकी से देखे तो; मात्र देखने से उसे ज्ञान हो जायेगा कि उसके पास दो प्रकार की इच्छाएं हैं – पहली वे जो कि बिना प्रयास के पूरी हो रही हैं; और दूसरी वे जिन्हें पूरी करने के लिये वह किसी न किसी प्रयास की ओर मुड़ जाता है। यही पृथ्वी के हर मनुष्य का जीवन है।

जिसकी जितनी इच्छाएं, बिना किसी शारीरिक प्रयास के पूरी हो जाती हैं; वह उतना ही भाग्यशाली समझा जाता है।

भाग्य का अर्थ है कि मनुष्य ने कुछ मात्रा में 'होनी की शक्ति' के साथ जन्म लिया है। जितना ज्यादा 'होनी की शक्ति' के साथ जन्म लिया है; वह उतना ही भाग्यशाली है। हर मनुष्य के जीवन का लक्ष्य है कि – इस पृथ्वी पर जन्म लेने के पश्चात्, वह अपना अधिक से अधिक समय आध्यात्मिक कर्म में लगाकर 'होनी की शक्ति' बढ़ाए; और अपने को शीघ्र अति शीघ्र इस योग्य बनाए कि उसे सब कुछ मात्र उसकी इच्छा शक्ति द्वारा; बिना किसी प्रयास के मिल सके। और इस तरह वह अपने जन्म के लक्ष्य को शीघ्रतम पा सके। यही मुक्ति धाम है।

पृथ्वी के अधिक से अधिक मनुष्य को इस सत्य का ज्ञान नहीं है कि सत्य का विलोम है; माया। माया का अर्थ है—जीवन की गलतफहमियां।

जीवन की सबसे बड़ी गलतफहमी (Ignorance) **यह है कि बिना प्रयास के जीवन में कुछ भी नहीं मिलता।**

इस गलतफहमी को ज्ञानी और आध्यात्मिक पुरुषों ने मायावी दलदल कहा है। दलदल का अर्थ है कि जिस इच्छा से पूर्ण होने के लिये (अर्थात् जिस दलदल से बाहर निकलने के लिये) मनुष्य जीवन भर प्रयास करे। फलस्वरूप; वह दलदल से बाहर आने की बजाय उसमें और धंसता चला जाय। समाज के अधिकांश मनुष्यों के जीवन की ओर यदि हम बारीकी से देखें, तो हमें यह ज्ञान होता है कि समाज में एक भी व्यक्ति मिलना कठिन है – जो जीवन के प्रयासों के माध्यम से जीवन की हर इच्छा को पूर्ण करके जीवन को छोड़ने की अवस्था को प्राप्त कर ले। ऐसा आध्यात्मिक पुरुषों के साथ तो होता है; जिनका जीवन प्रयासहीन होता है। परन्तु प्रयासपूर्ण जीवन बिताने वाले व्यक्ति तो दलदल में धंसते ही चले जाते हैं। यही जीवन सत्य है।

कुछ होश किया होता ?

✍ मां श्रीमती मालती

मोह माया के जाल में फंसे व्यक्ति, संसार से मिलने वाले मिथ्या सुख को असली सुख मानकर; वैसे ही सन्तुष्ट होते रहे – जैसे सूखी हड्डी को चूसने वाला कुत्ता, अपने ही मुख के रक्त को चूसकर सन्तुष्ट होता रहता है।

भगवान ने हमें अति सबल दो हाथ दिये, ताकि हम निष्काम भाव से कर्म करते हुये संसार सागर से तर सकें। प्रभु सेवा में अपने कर्म समर्पित कर; उसका दिव्य प्रेम पा सकें। किंतु हमने इनका दुरुपयोग किया, दिशाहीन क्रियायें करने में। कर्म न करके; कर्मकाण्ड को अपना आश्रय बनाया। परिणाम; अभी तक तो कुछ हासिल हुआ नहीं है, भविष्य में होगा – इसकी संभावना भी कम है।

जीवन भर हमें कोई लाख समझाये, हम समझने को तैयार नहीं हैं।

हमें समझ आता है तब – जब जीवन के अंतिम क्षणों में मृत्यु हमारे सामने आकर खड़ी होती है; और हम खाली हाथों को मसलते रह जाते हैं। तब हम कुछ क्षणों की मोहलत पाना चाहते हैं। मानों; अपनी सारी गलतियों को क्षण भर में सुधार डालेंगे। **किंतु मित्रो; तब तक बहुत देर हो चुकी होगी।**

अब याद लगी आने, कुछ काम किया होता?
जरा करके ठिकाने मन, हरि नाम लिया होता।।
सांसों के अनमोल हीरे, गर यूं न लुटाए होते।
हरि नाम मधुर अमृत, जी भर के पिया होता।।
धन धाम में यूं, ऐसी ममता न फंसी होती।
इस जोशे जवानी में, कुछ होश किया होता?
सौ बरस भी जिया, तो हरि नाम बिन क्या है?
दो दिन भी जिया होता, हरि नाम लिया होता।
संतों के समझाने पर, गर तू संभल जाता।

कट जाते सभी बंधन, हरि नाम ध्याया होता।

उजाले के कृष्ण

✍ श्री विवेक भटनागर

जब भी अंधेरा गहराता है; उजाला उसका समाधान बनकर आ जाता है। कृष्ण (जीवात्मा) ऐसा ही उजाला है, जो हर व्यक्ति के भीतर रहकर उसे अर्जुन (मन) की भांति कर्म करने को प्रेरित करते हैं और उसे समस्याओं के अंधकार से उबार लेते हैं। भाद्रपद कृष्ण अष्टमी की अर्द्धरात्रि। घुप अंधकार। काले बादलों के घटाटोप ने जैसे अंधकार और भी बढ़ा दिया हो। घनघोर वर्षा और नदियों का उफान। मथुरा के कारागार में बंद देवकी और वासुदेव (परिस्थितियां और समाधान) के मन मस्तिष्क में भी आशंकाओं का अंधकार। **चारों ओर घिरे ऐसे अंधकार में उजाले (श्रीमद्भगवद्गीता) के रूप में जन्म होता है श्रीकृष्ण का।** अंधकार नहीं चाहता कि; उजाले का जन्म हो। कंस (संस्कार रूपी राक्षस); जन्म होते ही मार देना चाहता है कृष्ण को।

लेकिन उजाले का जन्म होते ही अंधेरा स्वतः छंटता जाता है।

अपने आप जेल के ताले खुल जाते हैं। बेड़ियां टूट जाती हैं। मुक्ति का मार्ग खुल जाता है। वासुदेव; नवजात कृष्ण को यमुना पार, गोकुल ले जाते हैं। रास्ते में उफनाती हुई यमुना (उत्तेजनाएं) नीचे आ जाती है और कालिया नाग (Meditation) छतरी बन जाता है।

समाधान है; कृष्ण

समस्याओं के बीच समाधान का जन्म होना ही; कृष्ण-जन्म है। कृष्ण; समस्याओं के समाधान के लिए ही जन्म लेते हैं। वे न सिर्फ उत्पाती राक्षसों का अंत करते हैं, बल्कि अंततः कंस का भी वध कर देते हैं।

महाभारत के युद्ध में जब अर्जुन, परिस्थितियों में स्वयं को निरावलंब पाता है, कृष्णे उसके लिए भी समाधान बनकर प्रस्तुत होते हैं।

वे उसके रथ के सारथी ही नहीं, बल्कि अंतस के सारथी बन जाते हैं। कृष्ण के

उपदेश; श्रीमद्भगवद्गीता में 700 श्लोक के रूप में आज भी जीवन की सारी समस्याओं का समाधान प्रस्तुत कर रहे हैं।

सबके भीतर हैं; कृष्ण

कृष्ण; हम सबके भीतर हैं। परिस्थितियां जब कंस जैसा रूप धरती हैं, तो अंतस में इस कृष्ण का जन्म होता है। यानी समस्याएं आती हैं; तो समाधान का जन्म होता है। इसलिए हमें समस्याओं से मुंह नहीं चुराना चाहिए। न ही उनसे डरना चाहिए। बल्कि उनसे डटकर मुकाबला करना चाहिए। हमें उनसे टक्कर लेने के लिए; समाधान की आवश्यकता पड़ती है। वह समाधान ही कृष्ण है। वे हमें उस वक्त अपना कर्तव्य याद दिलाते हैं। हमें समस्याओं में हाथ पैर छोड़ने नहीं देते। श्रीकृष्ण स्वयं (10.20) में अर्जुन से कहते हैं :-

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामंत एव च।।
मैं सभी जीवों के हृदय में स्थित जीवात्मा हूं।
उनका आदि, मध्य और अंत भी मैं ही हूं।
Seated in hearts of one and all,
As an inner soul to recall,
I am the begining and the end,
Of living beings, O My friend.
मैं सर्वजीवों के हृदय में अर्न्तात्मा पार्थ हूं।
सब प्राणियों का आदि एवं मध्य अन्त यथार्थ हूं।

श्रीकृष्ण सभी के भीतर जीवात्मा रूप में हैं। हम सबके भीतर स्थित आत्म तत्व ही कृष्ण है। वही जीवन की सारी समस्याओं का समाधान भी हैं।

लेकिन हम अपने भीतर की शक्ति को नहीं पहचानते।

हम अपने भीतर कृष्ण को ही नहीं जानते। इसी कारण समस्याओं में फंसकर दुखी रहते हैं।

जानें; अंतस की शक्ति को

दृष्टान्त - एक मजदूर पूरे दिन काम करने के बाद अपने घर की ओर जा रहा

था। वह इतना थका था कि घर पहुंचना बड़ा मुश्किल लग रहा था। इसी बीच एक कुत्ता उसे काटने के लिए दौड़ा।

क्षण भर में मजदूर इतनी तेजी से भागा और एक पेड़ पर चढ़ गया।

वह चकित था कि इतनी थकान के बावजूद संकट में इतनी ऊर्जा और फुर्ती उसमें आई कहां से? दरअसल, यही तो वह शक्ति है; जो उसके अंतस से आई है। उसकी जीवात्मा से आई है। वही शक्ति तो कृष्ण है।

द्रौपदी की लाज बचाने की तरह; श्रीकृष्ण सदैव संकट में समाधान प्रस्तुत करते हैं। समाधान; हमारे अंतस के कृष्ण से आता है।

अंतस का विराट स्वरूप

हम अपने अंतस के विराट रूप को पहचान लें, तो कृष्ण को भी पहचान सकेंगे। द्वापर युग में, अर्जुन भी हमारी तरह ही अज्ञान के बंधनों में था। उसके पास कृष्ण थे। पर उसे उनकी विराटता का भान नहीं था। इसीलिए कृष्ण को अपनी विराटता दिखानी पड़ी। **हमारे पास भी अंतस के रूप में कृष्ण हैं। पर हम भी अर्जुन की तरह अपने ही अंतस की शक्तियों से अपरिचित हैं।**

कस्तूरी कुण्डल बसे, मृग ढूंढ़े बन मांही।
ऐसे घट घट में राम हैं, दुनियां देखे नांही॥

लेकिन जब हम किसी समस्या से घिरकर उससे पलायन करने की सोचने लगते हैं; तब हमें अंतस रूपी कृष्ण के सहयोग से उस समस्या से मुठभेड़ कर, उस पर विजय प्राप्त कर सकते हैं।

गुरुत्व का केंद्र हैं; कृष्ण

ओशो का कहना है; कृष्ण शब्द का एक अर्थ होता है, जो आकृष्ट करे। खींचे; यानी गुरुत्व का केंद्र। प्रत्येक व्यक्ति का जन्म कृष्ण का जन्म है। क्योंकि हमारे भीतर जो जीवात्मा है। वह गुरुत्व का केंद्र है, जिस पर सब चीजें खिंचती हैं। जीवात्मा पर शरीर खिंचकर निर्मित होता है। फिर परिवार खिंचकर निर्मित होता है। फिर समाज निर्मित होता है। फिर जगत खिंचकर, उसके आसपास

निर्मित होता है। हमारे कृष्ण के केंद्र के आस पास ही सब घटित होता है।

गुरुत्व का केंद्र; कृष्ण महागुरु हैं।

अर्जुन के वे गुरु हैं। अर्जुन के आंखों पर जो अज्ञान (Ignorance) का पर्दा पड़ा हुआ था, उसे उन्होंने गीता ज्ञान देकर हटाया। उसे सत्य का दर्शन कराया, और अपना कर्तव्य करने के लिए प्रेरित किया।

अवतारों में मात्र कृष्ण को ही ग्रंथों ने पूर्ण अवतार कहा है।

कृष्ण समस्याओं में फंसते नहीं; बल्कि उनका निराकरण करते हैं। उनके चेहरे पर कभी परेशानी नहीं होती। वे आनन्द का स्रोत बनकर समस्याओं को हल करते हैं। मानों हमें समझा रहे हों कि कृष्ण प्रत्येक में जीवात्मा है।

जीवात्मा का स्वभाव ही सदा प्रसन्न रहना है।

फिर हम परिस्थिति के वश में होकर क्यों दुखी हो? हमें अपने अंतस में स्थित इन्हीं महागुरु कृष्ण पर भरोसा करते हुए प्रसन्नतापूर्वक हर संकट से बाहर आने के लिए कर्म करना होगा।

जीवन सम्बन्धी परिभाषा

आत्मा :- सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में समाया हुआ एक चेतन तत्व है। वह नित्य, शाश्वत, सत्, चित व आनन्द स्वरूप है। यह न तो कभी जन्म लेता है और न कभी मरता है। यह अकर्ता है। आत्मा सर्वव्यापक है। आत्मा और परमात्मा पर्यायवाची शब्द हैं।

शरीर :- अकेला आत्मा कुछ भी नहीं करता। इसको क्रियाशील बनाने के लिए प्रकृति की जरूरत पड़ती है। शास्त्रों में लिखा है कि परमात्मा की इच्छा होने पर प्रकृति आत्मा के साथ मिलकर सृष्टि का निर्माण करती है। इसी से हमारा शरीर भी बना है।

अंत:करण या जीव :- प्रकृति के तत्वों में से मन, बुद्धि व चित्त को अंत:करण कहा जाता है। इस अंत:करण को, जीव नाम से भी जाना जाता है।

जीवात्मा :- आत्मा सर्वव्यापक है। लेकिन जब इस आत्मा का एक अंश

अंत:करण से घिर जाता है, तब उसको जीवात्मा कहा जाता है।

महाप्राण :- प्राण भी एक सर्व व्यापक तत्व है। इस व्यापक शक्ति को महाप्राण कहा जाता है, जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में एनर्जी के रूप में मौजूद होता है।

प्राण :- लेकिन जब यह महाप्राण अंत:करण को गति देता है, तब इसको प्राण कहा जाता है। आत्मा की तरह जीवात्मा भी कुछ नहीं कर सकता। इसलिए अंत:करण को क्रियाशील बनाने के लिए एक शक्ति इसके साथ और जुड़ जाती है, जिसको प्राण कहा जाता है।

शिव सर्वव्यापी आत्मा हैं और उनकी शक्ति सर्वव्यापी महाप्राण है। शरीर में स्थित सभी प्राण अपने मूल स्त्रोत महाप्राण से ही बल पाते हैं।

इन्द्रियां :- हमारी सभी इन्द्रियों को भी प्राण ही कहा जाता है, क्योंकि प्राण और कुछ नहीं, बल्कि एक शक्ति है। जब यह शक्ति देखने का कार्य करती है-तो आंख कहलाती है। सुनने का कार्य करती है-तो कान कहलाती है। इसलिए दसों इन्द्रियों को भी प्राण में ही गिना जाता है। इस प्रकार प्राण की सहायता से अंत:करण कार्य करने वाला बन जाता है। हम शरीर के द्वारा सभी कार्य इसी प्राण की सहायता से करते हैं। असल में यह प्राण ही; जीवात्मा को इस शरीर में रहने के योग्य बनाता है। स्वस्थ बने रहने के लिए शरीर में स्थित इस प्राण को बलिष्ठ बनाया जाता है। जिसके लिए अनेक उपाय बताए गए हैं।

मृत्यु :- जब ये प्राण किन्हीं कारणों से शरीर में बहुत कम मात्रा में रह जाते हैं, तब शरीर कार्य करने के योग्य नहीं रह जाता और जीवात्मा उस शरीर का साथ छोड़ देती है, जिसको मृत्यु कहा जाता है। उसकी अंत:करण मिश्रित आत्मा जिसको जीवात्मा कहते हैं, वह प्राण के सहयोग से शरीर से निकल जाती है। जीवात्मा में ही अंत:करण, इन्द्रियां, नासिक्य प्राण; तीनों सम्मिलित हो जाते हैं। एक शरीर से दूसरे शरीर तक अंत:करण को ले जाने का कार्य यही प्राण करता है, जो जीवात्मा का ही एक अंग होता है। इस प्रकार इस जन्म में किए गए अच्छे बुरे कर्मों का फल भी जीवात्मा के साथ चला जाता है; और उनका फल उसी जीवात्मा को भोगना पड़ता है।

मुक्ति :- जीवात्मा हर जन्म में एक ही रहता है, लेकिन अभ्यास और वैराग्य

(Meditation) के द्वारा साधक के अहंकार के साथ साथ उसके सभी विकार खुद-ब-खुद नष्ट होते हैं। **फिर योगी में इच्छा और आसक्ति नहीं रहती।** सभी इच्छाएं स्वयंमेव पूर्ण हो जाती है और चित्त में पड़े हुए पिछले सभी जन्मों के संस्कारों का नाश होने लगता है। इस अवस्था को मुक्ति कहते हैं। योगी इसी मुक्त भाव में रहते हैं; और शरीर त्याग के बाद उन का जीवात्मा सर्व व्यापक आत्मा (परमात्मा) में लीन हो जाता है, प्राण अपने मूल महाप्राण में लीन हो जाते हैं। इस प्रकार योगी का पुनर्जन्म नहीं होता और वह जीवन-मरण के इस आवागमन से मुक्त हो जाता है।

मेरे द्वारा भगवान का इन्टरव्यू

✍ श्री देवराज पाहूजा

147/4, मौहल्ला मौलवियान, तलाकी गेट, हिसार

मैंने भगवान से कहा : मेरी सारी पीड़ाएं छीन लो।

भगवान ने कहा : मुझे छीनने की क्या जरूरत? तुम स्वयं साथ लिए घूम रहे हो, तुम ही त्याग दो।

मैने कहा : तुम सहनशक्ति दो - धीरज दो।

उसने कहा : धीरज आसमान से नहीं टपकता। परेशानियों और पीड़ाओं के बीच उपजता है।

मैंने कहा - मुझे खुशियां दो।

उसने कहा : मैं तुम्हें आशीर्वाद दे सकता हूं, खुशियां तुम्हें अपने अन्दर से जगानी होंगी।

मैंने कहा - अच्छा फिर मुझे वे सारी चीजें दो, जिनसे मैं जिन्दगी का आनन्द ले सकूं।

उसने कहा : संसारी चीजों में अल्पकाल का आनन्द है। मेरी याद (Meditation) के सिवाये किसी और चीज में तुम्हें अनन्त आनन्द, मिल ही नहीं सकता।

मैंने कहा - ठीक है, फिर मुझे वह शक्ति तो देना, कि मैं भी दूसरों से उतना ही प्यार करूं, जितना तुम मुझसे करते हो।

भगवान मुस्कुराकर बोले : तुम मेरा दिया हुआ प्यार जितना बांटोगे; उससे कई गुना प्यार तुम्हारे अन्दर स्वत: ही उभरेगा।

मिट्टी का यह तन पवित्र हुआ, गंगा के स्नान से।
अन्त:करण हो जाए पवित्र, भगवान के 'ध्यान' से॥

शान्ति को बाहर खोजना व्यर्थ है।
वह तो जन्म से ही तुम्हारे गले का हार है॥

परमधाम

—प्रस्तुति : श्रीमती अनु जैन, भिवानी

सर्गुण-निर्गुण-निर्वाण का मालिक; जो सबका पालनहार है - वह सच्चिदानन्द सिरजनहार, अपने घर परमधाम में रहता है। यहां परम का अर्थ जिसके आगे या अधिक और कुछ न हो तथा जो सर्वोच्च हो। धाम का अर्थ है - रहने का स्थान। इस प्रकार परमधाम उस आद् ज्योतिस्वरूप, परब्रह्म परमेश्वर का शोभास्थल है।

जब जीवात्मा सूक्ष्म अन्दर यानि निर्वाण पहुंचे, परमधाम की सीढ़ी चढ़ना (Meditation) आरम्भ करती है। तो जीव का हृदय प्रकाशमान हो उठता है। यहां जीवात्मा को बोध हो जाता है कि; सारा भूमंडल उसी के प्रकाश से जगमगा रहा है। अष्टावक्र गीता (2.8) के अनुसार :

प्रकाशो में निजं रूप नातिरिक्तौऽस्म्यहं तत:।
यदा प्रकाशते विश्वं तदाऽहंभस एवं हि॥

प्रकाश मेरा अपना स्वरूप है। मैं उससे पृथक् नहीं हूं। जब विश्व प्रकाशित होता है, तब वह मेरे ही प्रकाश से प्रकाशित होता है।

संसार की उत्पत्ति आत्मा से हुई है; और उस का लय भी आत्मा में ही होगा। इस प्रकार संसार का कारण आत्मा ही है। वही अपने में समेट लेता है; संसार को।

जीवात्मा का परमधाम पहुंचना; अपने निजीघर को पाना होता है। यानि, खुद

परमपद प्राप्त करने के साथ साथ कुल सगली (जीवात्मा) को तारने का परोपकार करना; उसका परम कर्त्तव्य हो जाता है।

यही निष्काम रास्ता, जीव को ब्रह्म का बोध करा, उसे स्वयं ब्रह्मा का भी ब्रह्म होने का सत्य, ज्ञात करा देता है। तभी तो कहा गया है कि, एक भाव में स्थित व स्थिर बने रहने हेतु, कुल दुनियां सर्वव्यापक भगवान अर्थात् विराट् ईश्वर के यथार्थ को मानते हुए; अपना फर्ज अदा (हंस कर) करो और धारण किए हुए द्वि-द्वेष जैसे कुत्सित भावों पर भावातीत ध्यान (Transcendental Meditation) द्वारा विजय पा - एक ख्याल, एक दृष्टि और एक दर्शन हो जावो।

याद रखो कि; जहां आत्मिक ज्ञान प्राप्त करने के उपरांत - संतोष, धैर्य, सच्चाई के प्रश्न हल कर जीवात्मा; जोत में जोत हो, निर्वाण में जगमगा उठती है; वहीं आत्मिक ज्ञान की गुढ़ाई, (यानि विचार शब्द द्वारा उसका अपना अस्तित्व) अर्थात् रूप-रंग-रेखा मिट जाता है। और वह जीवात्मा परमधाम पहुंच सर्व प्रकाशित व बेअंत-बेअंत कहलाती है।

यह अवस्था या विचार - अपने आपको ईश्वर अनुभव करना यानि; ईश्वर मैं हूं। अपनी जीवात्मा का प्रकाश ही ईश्वर है; भावातीत ध्यान की द्योतक है। तात्पर्य यह है कि फिर उसे; शक्ति लक्ष्मी के रूप में किसी अन्य सहायक की आवश्यकता नहीं रहती और वह अपने आप को परिपूर्ण पा, स्वतन्त्र रूप से अपने जीवन-लक्ष्य; परमधाम को प्राप्त हो जाता है।

स्वार्थ पूरा करना ही; जीवन लक्ष्य

—प्रस्तुति : श्री सतनारायण शर्मा (09416164702)

यदि हम स्वार्थ का सन्धि विच्छेद करें तो हम पाते हैं - स्व + अर्थ। स्व का मतलब होता है - अपना; और अर्थ का मतलब होता है - मन का धन।

सभी का मन सुख का भूखा है।

इसलिए जिस प्रकार एक पेट के भूखे मनुष्य को खाने की आवश्यकता महसूस होती है, उसी प्रकार हर जीवित प्राणी को अपने मन के सुख की भूख मिटाने (इच्छाओं की पूर्ति) की आवश्यकता महसूस होती है।

मन की भूख को मिटाना ही, जीवन का लक्ष्य होता है।

जहां जीवन है; वहां सुख की भूख मिटाने के लिए सुख चाहिए। मात्र यही सत्य सृष्टि के सारे प्राणियों के जीवन का आधार है। जिस प्रकार से पानी दो तरह का होता है। समुद्रा का खारा पानी और गंगा, यमुना जैसी नदियों का मीठा पानी।

सुख भी दो तरह का होता है।

एक बाहर की वस्तुओं का सुख, जिसे मन; इन्द्रियों द्वारा सम्पर्क करने की अनुभूति के रूप में प्राप्त करता है।

दूसरा ब्रह्मा के तत्व का सुख, जिसे मन स्वयं बिना किसी इन्द्रिय की मदद से सम्पर्क करके प्राप्त करता है।

पहले प्रकार के सुख को सुख (Pleasure) और दूसरे प्रकार के सुख को आनन्द (Bliss) कहते हैं। समुद्र का पानी प्यास नहीं मिटाता; केवल प्यास की तड़पन को बढ़ाता है। प्यास को तृप्त करने की क्षमता; केवल गंगा यमुना, जैसी नदियों के पानी में है। इसी प्रकार से सुख; केवल सुख की तड़पन बढ़ाता है।

आनन्द सुख की भूख मिटाता है।

सुख; मात्र उन्हीं चीजों का है-जो यथार्थ में हैं। चाहे वे बाहर की दुनियां के हों अथवा अन्दर की दुनियां के।

अन्दर का सत्य; बाहर के सत्यों का मूल आधार है।

सुख की भूख मिटाने में सभी का जीवन व्यस्त है। जो नहीं जानता वह, मात्र बाहर के सुखों के पीछे दौड़कर उसको प्राप्त करने की कोशिश में अपना जीवन नष्ट कर देता है। कहा जाता है कि वह माया के दलदल में फंसा हुआ है। जो भी माया के दलदल (Ignorance) में फंसा हुआ है, उसकी गलतफहमी केवल इतनी है कि

जिन सुखों के माध्यम से वह अपना जीवन सुखी बनाना चाहता है। वे सुख तो केवल सुख की तड़पन बढ़ाते हैं, सुख की भूख नहीं मिटाते।

गलतफहमी वश कुछ गलत रास्तों पर चलकर समझते हैं कि उन्हें सही रास्ता मिल गया है। ऐसे लोग आनन्द उभारने का रास्ते पाने की कमी में, मात्र सुख छोड़ने और दु:ख अपनाने का रास्ता अपना लेते हैं। लेकिन लेखक यह कहना चाहता हे कि

जब तक आनन्द उभारने का रास्ता नहीं मिलता, ऊपर बताए हुए रास्ते; हमेशा ही दु:ख मिटाने में असफल रहेंगे।

क्योंकि दुख अपनाने और सुख छोड़ने वाला व्यक्ति भी हमेशा द्वैत के क्षेत्र में ही हाथ पैर मार रहा है। दु:ख से परे जाने के लिए तो केवल एक ही मार्ग है और वह द्वैत क्षेत्र में अद्वैत के प्रभाव को बढ़ाने का मार्ग; अर्थात् आनन्द उभारने का मार्ग है।

स्वार्थ पूरा करना ही; जीवन का लक्ष्य है।

स्वार्थ; केवल आनन्द को उभारने के मार्ग पर पूरा होगा। निष्क्रियता (Meditation) द्वारा आनन्द उभारने का एक मार्ग, हम साधकों के बीच है। इस मार्ग पर हम उस समय ही चल रहे होते हैं; जिस समय हमारे जीवन में प्रयास हटा रहता है। इसे यों भी कह सकते हैं कि

जिस समय बुद्धि क्रियाशील नहीं रहती; उसी समय आनन्द उभरता है।

मन में ब्रह्म तत्व के दो गुण; चित और आनन्द उभरने लगते हैं। चित का उभरना और चेतना का विकास; एक ही बात है। जब हमें चेतना बढ़ाने का रास्ता मिलता है तब; धीरे-धीरे

हमारे अन्दर भावातीत जगत की महसूसियत पैदा होती है और इस महसूस करने की शक्ति को ही भावातीत चेतना (Transcendental Consciousness) कहते हैं।

यह स्वाभाविक है कि जब यह चेतना काफी बढ़ जाती है; तब मनुष्य को दूसरों को सुख देने में, यह नहीं लगता कि उसके सुख में कुछ कमी हो जाएगी; और जब वह चेतना पूर्ण रूप से जागृत हो जाती है, तब उपर्युक्त डर की कोई संभावना ही नही रहती।

इस अवस्था तक पहुंचने पर व्यक्ति नि:स्वार्थ हो जाता है।

आज के समाज के अधिकांश मनुष्य यह समझते हैं कि नि:स्वार्थ शब्द शायद स्वार्थ शब्द का विलोम है। लेकिन हमने यह देखा कि

स्वार्थ और नि:स्वार्थ दोनों की, दो अवस्थाएं हैं।

इन अवस्थाओं का सम्बन्ध मन का बाहर और भीतर की दुनियां में विचरण से है; स्थूल और सूक्ष्म दुनिया में विचरण से है; और ये दोनों जगत-विपरीत दिशाओं में हैं। यही कारण है कि चेतना के विकास की कमी में ये लोगों को एक दूसरे के विपरीत यानी विलोम लगते हैं। लेकिन सत्य यही है कि ये मन की दो विपरीत अवस्थाएं हैं। जब मन नि:स्वार्थ हो जाता है, तब उस अवस्था में उसके अन्दर सुख का स्वार्थ खत्म हो जाता है, लेकिन आनन्द का स्वार्थ नहीं खत्म होता। यदि सुख का स्वार्थ रहता भी है; तो भी यह असम्भव हो जाता है कि वह क्षण भर के लिए भी इस बात को भूल जाय कि बाहर के समस्या सुखों को प्रदान करने वाला आनन्द है और ऐसी अवस्था में वह बहुत तीव्रता के साथ आनन्द को बढ़ाने में लग जाता है, जिससे मन की इतनी बड़ी बड़ी इच्छाएं भी पूरी हो जाएं जिनकी पूर्ति आनन्द की कमी में मात्र परियों की कहानी जैसी होती है। धीरे-धीरे उसकी आगे की शेष-तीनों चेतनाओं - ब्राह्मी (Cosmic), ईश्वरीय (God) तथा अद्वैत (Union) का विकास होता है। मन का नि:स्वार्थ होना, मन की अवस्था है, जहां से उच्च स्तर की चेतनाओं का विकास होता है।

'ध्यान', बला नहीं; जीने की कला है

✍ श्रीमती ऊषा गर्ग (099918-46415)

मानव को आज नहीं तो कल; यह मानना ही पड़ेगा कि भगवान् ही शक्ति, आनन्द और ज्ञान का स्त्रोत है। आनन्द एवं शक्ति को पाने के लिए भगवान को पाना ही पड़ेगा। और भगवान की शक्ति पाने के लिए अन्दर की दुनिया (Meditation) में जाना ही पड़ेगा। अर्थात् ध्यान का अभ्यास करना ही होगा; उसी से ही सम्भव है-शान्ति एवं आनन्द।

ईश्वर की कृपा से सभी मनुष्यों को एक पुरस्कार मिलता है; वह है-आत्मबल। यह एक कामधेनु के समान है। जिसका आत्मबल दृढ़ होता है; उसके पास किसी वस्तु की कमी नहीं रहती।

अब प्रश्न यह है कि यह आत्मबल; दृढ़ होगा कैसे?

ध्यान बहुत सरल है। सरल इतना कि साधारण व्यक्ति भी इसे सहज (आसानी) से कर सकता है। कोई इसमें बुद्धि, पैसा या हष्ट पुष्ट होना आवश्यक नहीं! बस एक युक्ति और थोड़ा अभ्यास।

और यह युक्ति कठिन भी इतनी है: बड़े बड़े महारथी भी हार जाते हैं।

जो सत्संगी अर्थात् भगवान् से प्यार करने वाला, यह जानता है कि मन्दिर में अगर मूर्ति न हो, अस्पताल में डाक्टर न हो, गाड़ी में ब्रेक न हो और भोजन में नमक न हो; तो सब बेकार है। इसी तरह जीवन में सभी प्रकार के भौतिक सुख-सुविधाएं हैं; अगर मन में सुख-शांति, समता, करूणा नहीं; तो जीवन बेकार है। **धर्म बिना व्यक्ति: बाहर से सब कुछ पाने पर भी भीतर में खाली सा रहता है, क्योंकि बाहरी सुख अस्थाई है।**

मरने के बाद; धर्म ही साथ जाता है।

धर्म अन्दर का प्रकाश है; जिससे मनुष्य की बुराईयां अपने आप समाप्त हो जाती हैं। उसके हाथों, फिर किसी का बुरा नहीं होता; स्वयं का भी कल्याण होता है। इससे वर्तमान तो सुधरता ही है: जिसका वर्तमान सुन्दर होगा, उसका भविष्य तो अपने आप सुन्दर हो जायेगा। इसलिए भविष्य की चिंता छोड़कर; प्रत्येक व्यक्ति को अपना वर्तमान सुन्दर बनाना चाहिए। इस रास्ते पर चलकर व्यक्ति में स्वयं को जानना, समझना; और अंतिम है-आत्मा को पाना। आज का व्यक्ति; अफसोस है कि इस रास्ते को भूलता जा रहा है। न उसकी धर्म में आस्था है, न भगवान में और न अपने आप पर; इसीलिए इतना अशान्त हो गया है।

उदाहरण: जैसे एक आदमी ट्रेन में यात्रा कर रहा था। जब टी.टी. टिकट देखने आया तो उसने जेब, अटैची, बिस्तर सब टटोला; टिकट नहीं मिला। टी.टी. बोला; आप अच्छे आदमी दिख रहे हैं। बिना टिकट, फिर कैसे यात्रा कर सकते हैं? नहीं मिल रहा; तो कोई बात नहीं। तब वह यात्री झुंझलाकर बोला; मुझे बिना टिकट यात्रा की चिंता नहीं; मैं तो इसलिए ढूंढ रहा हूँ कि टिकट देख लूँ; मैंने जाना किस शहर में है? **सच में अधिकतर लोग हैं, जिन्हें पता ही नहीं कि हम कौन हैं और कहां से आये हैं ? कहां जाना है ; मंजिल पाने के लिए?** इसलिए धर्म की यात्रा करनी होगी। धर्म का मर्म समझने के बाद आदमी के स्वभाव में करूणा

का भाव, क्रोध खत्म, लोभ भी कम और इच्छाएं भी कम। कहने का तात्पर्य: बुराईयों पर काबू हो जाता है और अच्छे गुण आ जाते हैं। यह तभी सम्भव: जब आदमी ध्यान के रास्ते पर चले।

ध्यान विधि : एकान्त में आंखे बन्दन करके (किसी भी समय) कुचालक (Bad Conduct of Electricity) पर; दिन में तीन बार 30-30 मिनट, एक बार भगवान का नाम लेकर बैठ जाएं। बुद्धि का प्रयोग नहीं करना: जो होता उसको होने देना। यही ध्यान का आरम्भ है। अर्थात् विचारों का निकलना ही: ध्यान का आरम्भ होना है। ❑

जीवन के गुण और शिक्षा का सम्बन्ध

✍ **महर्षि श्री महेश योगी**

यह तो स्पष्ट है कि शिक्षा के सामने युगों और शताब्दियों से समस्याएं आती रही हैं। शिक्षा सन्तोषजनक नहीं रही है-उसमें सदा से कुछ कमी रही है। तथ्य यह है कि जैसी कुछ शिक्षा रही हो, या जैसी आज है-उसने एक पूर्ण मानव का विकास नहीं किया। एक शिक्षित व्यक्ति में जिन जीवन के गुणों की अपेक्षा की जाती है-वे वर्तमान शिक्षा पद्धति में विकसित होते नहीं जान पड़ते। कहीं कोई कड़ी खो गयी है।

इस कमी को कैसे पूरा करना चाहिए?

शिक्षा में क्या कमी है? यह सबको स्पष्ट हो जाना चाहिए। यदि हम ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया को देखें तो हमें ज्ञान के दो पक्ष मिलते हैं-यथा पदार्थ का ज्ञान और कर्त्ता; अर्थात् उस पदार्थ को जानने वाला, ज्ञाता है।

> **वर्तमान शिक्षा प्रणाली पदार्थ का ज्ञान देती है। उसमें ज्ञाता को जानकारी नहीं मिलती। ज्ञान की धारा के दो किनारे हैं। जिनमें एक ओर पदार्थ है; और दूसरी ओर पदार्थ का जानने वाला ज्ञाता है। इन दोनों में ज्ञाता का महत्व पहला है। जैसा ज्ञाता होगा; वैसा ज्ञान होगा। जब मन सुस्त होता है और जब ज्ञाता अर्धचेतन रहता है; तब उसका ज्ञान कुछ और तरह का होता है। जब वह सवेरे पूरा चेतन और पूरा जगा हुआ होता है; तब उसकी बुद्धि, भावना और ज्ञान बिल्कुल दूसरी तरह होता है। चेतना के विभिन्न स्तरों में ज्ञान विभिन्न प्रकार का होता है।**

यदि हम अपने अनुभव से देखें तो बहुत स्पष्ट होगा कि शिक्षा हमें क्या देती है? वह हमें भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र, गणित, भूगोल-विद्या आदि के सथूल मूल्यों का ज्ञान देती है। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों की जानकारी देने के लिए विभिन्न विषय हैं।

> **ज्ञाता के सम्बन्ध में ही कोई जानकारी नहीं दी जाती। ज्ञाता की जानकारी के बिना; (जब ज्ञाता स्वयं अपने बारे में नहीं जानता), शिक्षा का पूरा ढांचा ही आधारहीन है। ज्ञान का आधार ज्ञान की चेतना है। परन्तु यदि ज्ञाता स्वयं अन्धकार में है, यदि वह स्वयं को नहीं जानता; तब यह स्पष्ट है कि ज्ञान के पूरे ढांचे का ज्ञान, पूरे क्षेत्र का कोई आधार नहीं है। और ऐसा आधारहीन ज्ञान अपूर्ण होता है।**

वर्तमान शिक्षा जो ज्ञान देती है; वह अपूर्ण होती है। क्योंकि वह जीवन के पदार्थ विषय के मूल्य ही दे पाती है। ज्ञाता-विषयक नहीं। व्यक्ति पूर्ण नहीं हो पाता, फिर भी शिक्षा का वरदान ऐसा है कि वह जीवन के भौतिक क्षेत्र को विकसित करता है। इसलिए जिस क्षेत्र में वर्तमान शिक्षा-पद्धति प्रवेश करती है; उसमें कुछ उन्नति और सन्तोष मिलता है। क्योंकि वह पदार्थ के सम्बन्ध में ज्ञान देती है। इसलिए भौतिक क्षेत्र में उन्नति होती है। अब वह उपयुक्त समय है कि हम ज्ञाता को अपनी जानकारी, सभी विषयों के साथ-साथ दें।

> **हमें यह कहने में प्रसन्नता होती है कि ज्ञाता की यह जानकारी अपनी समग्रता में और अपने पूरे मूल्य में बहुत सरलता के साथ उपलब्ध होती है। भावातीत ध्यान हमारी स्मृति को विशुद्ध चेतना के उस क्षेत्र में ले जाता है, जिसको हम समस्त ज्ञान का निवास स्थान कहते हैं। यह एक बहुत सुन्दर अभिव्यक्ति है। जब हम कहते हैं कि चेतना समस्त ज्ञान का निवास-स्थल है। यदि हम भावातीत ध्यान द्वारा अपनी चेतना का इस समस्त ज्ञान के आधार से-विशुद्ध चेतना के इस क्षेत्र से सम्पर्क करा दें।**

ज्ञाता क्या है? उसकी समग्रता का ज्ञान हो जाये, तब इस प्रत्यक्ष ज्ञान से ज्ञाता के प्रति अज्ञान दूर हो जावेगा। और इस तरह समस्त ज्ञान के आधार की कमी दूर हो जावेगी। हम कहते हैं कि चेतना में समस्त ज्ञान का निवास है, वह इसलिए कि जो भी ज्ञान हम अपनी इन्द्रियों, कार्यों, सूचना आदि से प्राप्त करते हैं; सूचना की वे सब लहरें हमारी ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा हमारी स्मृति की गहराई में, हमारी चेतना के स्तर पर, हमारे चेतन मन के स्तर पर, हमारी भावनाओं के स्तर पर, एक शब्द में कहें तो चेतना के स्तर पर पहुंच जाती है।

अत: चेतना का क्षेत्र वह क्षेत्र है, जहां समस्त सूचनाएं जमा हो जाती हैं। इसलिए हम कहते हैं कि चेतना, समस्त ज्ञान का आश्रय है। यह ज्ञाता का क्षेत्र है। इसी प्रकार ज्ञाता ज्ञान प्राप्त करता है। बिना भावातीत ध्यान का अभ्यास किये; चेतना के क्षेत्र के प्रत्यक्ष ज्ञान का, ज्ञाता के मूल्यों का उद्घाटन करने का कोई मार्ग दीखता नहीं। जब तक ज्ञाता दृष्टि से ओझल रहता है; तब तक उसका ज्ञान होना सम्भव नहीं है। और ज्ञाता की जानकारी के बिना पदार्थ-ज्ञान आधारहीन है। जहां यह स्पष्ट हो गया कि भौतिक पक्ष से समाज के स्थूल पक्ष की उन्नति हुई है; वहां चेतना का क्षेत्र अछूता रह गया। उसका प्रत्यक्ष अनुभव नहीं हो पाया।

दर्शन और मनोविज्ञान के कुछ पक्षों ने उसका स्पर्श किया है। परन्तु इन विषयों ने उसका सम्पूर्ण ज्ञान नहीं दिया। प्रत्यक्ष अनुभव से ही चेतना के सर्म्पूण मूल्य की प्राप्ति होती है; और ज्ञाता जागृत होता है। ज्ञाता के उस जागृत मूल्य से ज्ञान सजीव होता है। ❑

ध्यान माला

✍ श्री कुबेर प्रसाद 'गुप्त कबीर'

दोहा-100 : कैसे हो सकती भला, बिनु जाने परतीती?
एक पंथ के दो चरण, फिर प्रतीति से प्रीति॥

बिना जाने विश्वास कैसे हो सकता है? ये दोनों एक रास्ते के दो तरीके हैं। बाद में विश्वास के कारण प्रेम प्रकट हो जाता है।

दोहा-101 : प्रीति भक्ति को जन्म दे, सुख प्रसून खिल जाय।
हरिपद रति अक्षुण्ण हो, जीवन-मुक्त कहाय॥

प्रेम से भक्ति पैदा होती है। तब सुख रूपी पुष्प खिलता है। यह तो जन साधारण की व्यावहारिक मान्यता है कि; जो जिसको जितना जानता है, उस पर उतना ही विश्वास करता है। आये दिन ऐसी अनेक घटनाएं होती रहती हैं - जब किसी को बिना जाने विश्वास करके धोखा खाता है। पहले जानना फिर विश्वास करना - ये एक ही रास्ते के दो चरण हैं। **जब किसी पर विश्वास की मात्रा बहुत अधिक हो जाती है, तब उससे प्रेम हो जाता है।**

यह प्रेम जब समय पाकर अनन्य भाव से किसी एक के प्रति होता है, तब उसको भक्ति कहते हैं।

जैसे अमुक व्यक्ति क्रिकेट का भक्त है और अमुक संगीत का; इत्यादि। जब यही अनन्य प्रीति भगवान के प्रति होती है - तब उसे भगवान का भक्त कहा जाता है। जिसके जीवन में भगवान की भक्ति प्रस्फुटित होती है - उसके लिए भगवान की सभी विभूतियां (सम्पदा) उपलब्ध रहती हैं। रामचरित मानस के अनुसार स्वयं भगवान राम कहते हैं -

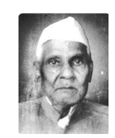

जन कहुं कछु अदेय नहि मोरे।
अस विस्वास तजहु जनि भोरे॥

ऐसे ही जन को 'निमित्त' भी कहा जाता है। वह जीवन-मुक्त होता है। क्योंकि, उसका जीवन हर प्रकार के बन्धन से मुक्त हो जाता है।

दोहा-102 : जाने बिनु विश्वास नहि, तेहि बिनु भक्ति अलभ्य।
राम द्रवहिं तेहि बिनु नहीं, तेहि बिनु लक्ष्य अगम्य॥

यह दोहा रामचरित मानस के निम्न दोहे की पुनर्प्रस्तुति है -

बिनु बिस्वास भगति नहिं, तेहि बिनु द्रवहिं न राम।
राम कृपा बिनु सपनेहुं, जीव न लह विश्राम॥

बिना जाने विश्वास नहीं होता। बिना विश्वास के भक्ति नहीं मिलती। बिना भक्ति के राम कृपा नहीं होती। राम कृपा के बिना लक्ष्य की प्राप्ति असम्भव है।

दोहा-103 : व्यक्ति रूप अव्यक्त का, दोनों नित्य अनन्त।

अनुभव-तल पर जान लें, तभी साधना अन्त॥

भावातीत क्षेत्र (Transcendental Field) में ब्रह्म की निर्गुण और निराकार चेतन सत्ता है तथा बाहर के क्षेत्र में सगुण और साकार। इस निर्गुण और निराकार सत्ता की चेतना में स्पन्दन (संकल्प) मात्र से वह सृष्टि के रूप में व्यक्त हुआ है। अत: भिन्नता और विचित्रता से पूर्ण यह सृष्टि भी मूल रूप से अव्यक्त सत्ता (ब्रह्म) ही है। परन्तु इस सत्य को पुस्तकें पढ़ कर और धार्मिक प्रवचनों को सुनकर बौद्धिक स्तर पर समझ कर कुछ भी करने से कोई लाभ नहीं होगा। क्योंकि वह ब्रह्म तत्व; बुद्धि द्वारा अगम्य है। बुद्धि; जीवन को सही दिशा-निर्देश देने में सक्षम नहीं है। अव्यक्त ब्रह्म को (और व्यक्त सृष्टि में उसके विद्यमान अस्तित्व को), विचार के स्तर पर मान लेना; कोई अर्थ नहीं रखता। ये दोनों भिन्न-भिन्न स्तरों पर; एक ही सत्ता है। इसका स्पष्ट अनुभव होना आवश्यक है। ऐसा अनुभव होने लगने पर; मनुष्य को किसी प्रकार की साधना करने की आवश्यकता नहीं है। यदि वह कोई साधना करता भी है, तो इस अवस्था में उसका समापन हो जाता है। यह अवस्था; अपने अन्दर विद्यमान आत्म-तत्व से सम्पर्क करने के सतत् अभ्यास से, यथा-समय स्वयं प्राप्त हो जाती है।

जब ब्रह्म और सृष्टि का यह रहस्य अनुभव-जन्य ज्ञान बन जाता है,
तब मनुष्य का जीवन सही दिशा में स्वयमेव सक्रिय रहता है।

सही दिशा की इस स्वाभाविक प्रवृत्ति में दुख का नाम-निशान भी नहीं होता। जीवन-चर्या स्वाभाविक और प्रयासहीन हो जाती है। इसे तुलसीदास जी ने भरतजी के संदर्भ में स्पष्ट किया है। चित्रकूट से लौटकर भरतजी ने वशिष्ट मुनि से कहा कि; आपकी आज्ञा हो तो मैं भी (वनवासी राम की भांति) नियम से रहूं-

'आयसु होइ त रहौ सनेमा।'

तब वशिष्ट जी ने कहा -

समुझब कहब करब तुम जोई।
धरम सार जग होइहि सोई॥

हे भरत, तुम स्वभाव से ही जैसा समझोगे, जो कुछ तुम कहोगे; और जो कुछ करोगे - वही धर्म का सार तत्व है। यही साधना के अन्त में होने की अवस्था है।

नोट : 1. ध्यान पत्रिका का वार्षिक शुल्क 50/- (पचास) रुपये मनी- आर्डर अथवा कैश : अपने Address एवं Contact No. सहित इस पते पर भेजें :-

–Sh. Rakesh Garg, Keshav Lace Emporium,
Shop No. 91, Lajpat Rai (Rehri) Market, Hisar-125001
Mobile : 098967-89678

2. प्रत्येक रविवार को बुधला सन्त मन्दिर, नज़दीक बस स्टैण्ड, हिसार जपकक्ष में प्रात: 11.00 बजे से 12.30 बजे, सामुहिक ध्यान प्रयोगात्मक और Hall में पारिवारिक ध्यान सत्संग सायं 3 बजे से सायं 5 बजे तक होता है। आप सभी सपरिवार सादर आमन्त्रित हैं।

3. ध्यान (Meditation or Self Realization) सम्बन्धी अपने अनुभव, लेख, आलोचना (Comments), अनुभूतियां, प्रश्नोत्तर, शंका-समाधान इत्यादि इस पते पर भेज सकते हैं :-

–सुरेश कुमार गुप्ता
1618, अर्बन स्टेट-2, हिसार-125005
E-mail : sureshgupta1936@gmail.com

PRINTED MATTER